उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय भारत का शिखर न्यायालय है। संविधान के भाग-5 में अनुच्छेद-124 से 147 तक उच्चतम न्यायालय की शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन है। यह संघीय न्यायालय होने के साथ-साथ अंतिम अपीलीय न्यायालय भी है। उच्चतम न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न विषयों पर राष्ट्रपति को सलाह भी देता है। भारतीय उच्चतम न्यायालय नई दिल्ली में स्थित है साथ ही मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार है कि वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से उच्चतम न्यायालय की अन्य पीठ की स्थापना तथा स्थान परिवर्तित भी कर सकता है (अनुच्छेद-130)। उल्लेखनीय है कि भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना के दो दिन बाद ही 28 जनवरी, 1950 को उच्चतम न्यायालय अस्तित्व में आया। इससे पूर्व वर्ष-1937 से 1950 के दौरान संसद भवन के **चैम्बर ऑफ प्रिंसेज** (Chamber of Princes) में फेडरल कोर्ट ऑफ इंडिया कार्यरत था। उच्चतम न्यायालय का उद्घाटन संसद भवन परिसर के **चैम्बर ऑफ प्रिंसेज** में ही हुआ था और वर्ष-1958 तक वहीं पर यह कार्यरत था। तत्पश्चात् भगवान दास मार्ग नई दिल्ली में नए परिसर के निर्माण होने के बाद वर्ष-1958 में उच्चतम न्यायालय यहां स्थानांतरित हो गया।

उच्चतम न्यायालय का गठन

अनुच्छेद-124(1) के अनुसार, 'भारत में एक उच्चतम न्यायालय होगा, जो एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा।' मूल संविधान में सात न्यायाधीश थे, लेकिन समय-समय पर संसद द्वारा आवश्यकतानुसार न्यायाधीशों की संख्या बढ़ायी जाती रही है। वर्तमान में एक मुख्य न्यायाधीश तथा 30 अन्य न्यायाधीशों के साथ कुल 31 न्यायाधीश हैं। न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि के लिए उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) अधिनियम, 1956 में संशोधन हेतु संशोधन विधेयक, 2008 संसद में दिसंबर, 2008 में लाया गया था।

न्यायाधीशों की योग्यताएं

भारत में उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए **निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए**-

- वह भारत का नागरिक हो।
- वह लगातार कम से कम 5 वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय का या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का न्यायाधीश रहा हो, या
- वह लगातार कम से कम 10 वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का अधिवक्ता रहा हो, या
- वह राष्ट्रपति की राय में विख्यात या कुशल विधिवेत्ता हो।

भारत में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को प्राथमिकता दी जाती है। वर्ष-2014 में कोलेजियम व्यवस्था (Collegium system) के द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद हेतु उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठ वकीलों की नियुक्ति किए जाने की अनुशंसा किया गया, जिसमें गोपाल सुब्रमण्यम और आर. एफ. नरीमन के नामों की सिफारिश की गयी। यह कदम अत्यधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक है, जब वकीलों को सीधे न्यायाधीश बनाया जा रहा है। भारतीय संविधान में यह उल्लिखित है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश वकील अथवा अन्य विधि विशेषज्ञ ही उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो सकता है। इसके पहले वर्ष-1999 में संतोष हेगड़े को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था, जब वे उच्चतम न्यायालय के एक वकील थे। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति पर एक विवाद भी उत्पन्न हो गया, क्योंकि वर्तमान भारतीय जनता पार्टी सरकार के द्वारा गोपाल सुब्रमण्यम के नाम पर कोलेजियम से पुनर्विचार की अनुशंसा की गई है। गोपाल सुब्रमण्यम के द्वारा न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति से अपना नाम स्वैच्छिक रूप में वापस ले लिया गया और उन्होंने कहा कि उच्चतम न्यायालय में तार्किक और वास्तविक रूप में कार्य नहीं किया।

शपथ

संविधान की तीसरी अनुसूची में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा अन्य न्यायाधीशों के शपथ लेने का प्रावधान है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्ति से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेते हैं, **जो इस प्रकार हैं** -

1. न्यायाधीश के द्वारा भारतीय संविधान के प्रति पूर्ण आस्था और निष्ठा की शपथ ली जाती है।
2. वह भारत की संप्रभुता और अखण्डता बनाए रखने की शपथ लेता है।
3. वह संविधान और विधि की रक्षा की शपथ लेता है तथा अपने कार्यालय के कर्त्तव्यों को बिना किसी भय अथवा पक्षपात, अनुराग अथवा असद्भावना के अनुसार संपादित करेगा।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

संविधान में उल्लिखित है कि राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाएगी। इसके लिए वह मंत्रियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से परामर्श कर सकेगा। भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में वह उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श लेगा, जिसे वह आवश्यक समझे, (अनुच्छेद-124(2) तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना अनिवार्य है तथा राष्ट्रपति परामर्श मानने के लिए बाध्य है या नहीं यह विवाद का विषय रहा है। संविधान लागू होने के बाद से 80 के दशक तक यही माना गया कि राष्ट्रपति के पास न्यायाधीशों के **परामर्श** मानने या न मानने का विवेकाधिकार है। वर्ष-1982 में एस. पी. गुप्ता के प्रसिद्ध मामले में उच्चतम न्यायालय ने भी यह कहा कि **परामर्श** मानना राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी नहीं है, लेकिन वर्ष-1993 और वर्ष-1998 के जजेज वाद में स्थिति बदल गई। वर्ष-1993 में एडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड के वाद में उच्चतम न्यायालय ने कोलेजियम व्यवस्था का प्रतिपादन किया। जिसके अनुसार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के दो अन्य न्यायाधीश कोलेजियम में शामिल होंगे और जिनके सलाह पर राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति करेंगे। परंतु कोलेजियम में यह स्पष्ट नहीं था कि मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की भूमिका क्या होगी? इसी के स्पष्टीकरण के लिए राष्ट्रपति के द्वारा उच्चतम न्यायालय से परामर्श लिया गया और वर्ष-1998 में उच्चतम न्यायालय ने कोलेजियम व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कहा कि कोलेजियम भारत के मुख्य न्यायाधीश और चार अन्य वरिष्ठ न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा, जो राष्ट्रपति को न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए लिखित सलाह देंगे। यदि कोलेजियम के दो न्यायाधीश किसी न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध हैं, तो राष्ट्रपति के समक्ष नियुक्ति की सलाह नहीं दी जाएगी। कोलेजियम के निर्णय में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का निर्णय सदैव शामिल होना चाहिए। दोनों मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद-124 के तहत न्यायपालिका द्वारा दिया जाने वाला परामर्श राष्ट्रपति मानने के लिए बाध्य है। वर्ष-1998 में उच्चतम न्यायालय ने सलाहकारी अधिकारिता के अंतर्गत् दिए गए निर्णय में यह कहा कि परामर्श केवल मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नहीं दिया जाएगा।

कोलेजियम प्रणाली की आलोचना

भारत, विश्व का एक मात्र लोकतांत्रिक देश है, जहां न्यायाधीशों की नियुक्ति में न्यायाधीशों की ही प्राथमिकता स्थापित हो गयी है, जबकि संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है और नियुक्ति कार्यपालिका का क्षेत्राधिकार है। न्यायपालिका के द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति संविधान में वर्णित शक्ति पृथक्करण के प्रावधानों के प्रतिकूल है। कोलेजियम के द्वारा की गई नियुक्ति अपारदर्शी और इसमें पक्षपात की संभावना भी बनी रहती है। कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश दिनाकरण को कोलेजियम के द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति की अनुशंसा की गई थी, जिन्हें बाद में पद से हटा दिया गया। न्यायाधीशों की नियुक्ति में न्यायपालिका की प्राथमिकता तार्किक नहीं है, क्योंकि विश्व के किसी भी लोकतांत्रिक देश में न्यायाधीश, न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं करते, बल्कि यह कार्यपालिका के द्वारा किया जाता है।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (National Judicial Appointments Commission, (NJAC))

न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया को व्यापक और समग्र बनाने के लिए तथा न्याय प्रणाली की गुणवत्ता में सुधार हेतु संसद ने एक **राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग** गठित करने की पहल की है। इस हेतु संसद ने 99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 पारित कर दिया है और 13 अप्रैल, 2015 से **राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग** अस्तित्व में आ गया है। यह अधिनियम प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की संरचना एवं कामकाज हेतु संविधान की विभिन्न धाराओं में संशोधन से संबंधित हैं तथा इस अधिनियम के द्वारा तीन नए अनुच्छेद-124(A), 124(B) और 124(C) जोड़े गए हैं।

उद्देश्य

इस आयोग का उद्देश्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका तथा विधायिका को बराबर का अधिकार देना है। वर्ष-1993 से अब तक प्रचलित कोलेजियम प्रणाली के तहत न्यायपालिका स्वयं ही उच्चतर न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है, जिसमें कार्यपालिका की कोई भूमिका नहीं है। संभवत: भारत, विश्व का पहला ऐसा देश है, जहां न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका की कोई भूमिका नहीं होती है। अत: इसी कमी को दूर करने हेतु यह आयोग बनाया गया है। साथ ही इस आयोग के गठन का उद्देश्य न्यायाधीशों की गुणवत्ता में सुधार करना भी है।

संरचना

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के नाम से एक आयोग होगा, जिसका अध्यक्ष भारत का मुख्य न्यायाधीश होगा। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम् न्यायाधीश, केन्द्रीय विधि मंत्री तथा दो प्रबुद्ध अथवा विख्यात व्यक्ति इसके सदस्य होंगे। इस प्रकार यह आयोग 6 सदस्यीय होगा। उल्लेखनीय है कि दो प्रबुद्ध अथवा विख्यात व्यक्तियों का चयन प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायाधीश और लोक सभा में विपक्ष के नेता या सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता से मिलकर बनने वाली समिति द्वारा किया जाएगा। इन दो प्रबुद्ध अथवा विख्यात व्यक्तियों में एक व्यक्ति अनुसूचित जाति व जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यक या महिलाओं में से नाम नामित किए जाएंगे। विख्यात व्यक्तियों का मनोनयन केवल 3 वर्ष के लिए की जाएगी, जबकि शेष सदस्य पदेन अर्थात् अपने-अपने कार्यकाल की अवधि तक आयोग के सदस्य बने रहेंगे और इनको दोबारा सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता, (अनुच्छेद-124(A))।

आयोग के कार्य

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के **प्रमुख कार्यों** का उल्लेख इस प्रकार हैं-

1. भारत के मुख्य न्यायाधीश व उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए नामों की सिफारिशें करना।
2. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति और एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण करना।
3. यह सुनिश्चित करना कि सिफारिश किए गए सदस्य सक्षम एवं योग्य हैं, (अनुच्छेद-124(B))।
4. न्यायिक नियुक्ति से संबंधित किसी या सभी प्रकार के कानून बनाने की शक्ति संसद को प्रदान की गई है। संसद की शक्ति के अंतर्गत् ही राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति विधेयक, 2014 को भी पारित किया गया है, (अनुच्छेद-124(C))।

आलोचना

इस कानून से न्यायपालिका में कार्यपालिका की दखलंदाजी का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा, जिससे न्याय व्यवस्था प्रभावित हो सकती है तथा न्यायपालिका, कार्यपालिका के दबाव में आ सकती है। जबकि यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद-50 में वर्णित कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्करण की भावना के अनुकूल नहीं है। इन प्रावधानों का प्रभाव न्यायालय द्वारा किए जा रहे विभिन्न मुकद्दमों की सुनवाई पर पड़ सकता है। जैसे-कोयला ब्लॉक आवंटन तथा अन्य। न्यायाधीशों की नियुक्ति सरकार द्वारा आधिकारिक रूप से की जाएगी, जिससे न्यायालय की स्वायत्तता प्रभावित होगी तथा न्यायाधीशों में कार्यपालिका की प्रशंसा के भाव आ सकते हैं। न्यायपालिका के द्वारा कोलेजियम व्यवस्था का निर्माण कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका के कार्यों में बढ़ते हस्तक्षेप के कारण किया गया था और नियुक्ति आयोग से कार्यपालिका का न्यायपालिका पर पुन: प्रभाव स्थापित हो जाएगा। अत: यह न्यायपालिका के स्वतंत्रता के विरुद्ध है। परिणामस्वरूप 5 जनवरी, 2015 को उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दाखिल की गई, जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून तथा 99वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 को निरस्त करने की मांग की गयी है और याचिका कर्ता ने यह आरोप लगाया है कि न्यायिक नियुक्ति आयोग से न्यायपालिका की स्वतंत्रता बाधित होगी तथा न्यायपालिका में कार्यपालिका का हस्तक्षेप बढ़ेगा। न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून की धारा-5 (6) के अनुसार, यदि आयोग के दो (2) सदस्य किसी की नियुक्ति से सहमत नहीं हैं, तो आयोग उस व्यक्ति की नियुक्ति की सिफारिश नहीं करेगा अर्थात् नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश के नजरिए को नजरअंदाज किया जा सकता है। इनका मानना है कि इससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता प्रभावित होगी और न्यायपालिका में सरकार का प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप बढ़ जाएगा। इस कानून की वैधता की जांच के लिए न्यायाधीश जे. एस. खेहर की अध्यक्षता में पांच सदस्यीय न्यायिक पीठ उच्चतम न्यायालय ने गठित की है, जो राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून की वैधानिकता की जांच कर रही है। यह विवाद उस समय

और बढ़ गया, जब प्रधानमंत्री द्वारा बुलायी गई बैठक में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने जाने से मना कर दिया, जिसमें आयोग की सदस्यता के लिए दो विख्यात व्यक्ति का चयन किया जाना था।

सरकार का तर्क

मूल संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार कार्यपालिका अथवा राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है और न्यायपालिका की स्वतंत्रता न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद आरंभ होती है। सरकार का मानना है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका का भी अधिकार है, ऐसा विश्व के लगभग सभी देशों में होता है। साथ ही सरकार का मानना है कि वर्तमान में प्रचलित **कोलेजियम व्यवस्था** शक्ति के पृथक्क्रण सिद्धांत के खिलाफ है। शक्ति के पृथक्क्रण सिद्धांतों में नियंत्रण व संतुलन (Check and Balance) भी निहित है, जिसके अनुसार न्यायाधीश स्वयं अपनी नियुक्ति नहीं कर सकते। सरकार का तर्क है कि न्यायाधीशों की नियुक्तियों में अनियमितता हो रही है तथा न्यायालय में भाई-भतीजावाद में वृद्धि हो रही है।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग असंवैधानिक

अक्टूबर, 2015 में उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय देते हुए 99वें संविधान संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर दिया और उच्चतम न्यायालय के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कोलेजियम व्यवस्था को बेहतर बताया। उच्चतम न्यायालय के अनुसार, न्यायाधीशों की नियुक्ति का मुद्दा न्यायपालिका की स्वतंत्रता का विषय है, जो संविधान का आधारभूत लक्षण है। इसलिए इसको संविधान संशोधन द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि वर्ष-1970 के दशक में न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनीतिक हस्तक्षेप करके न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित किया गया था तथा न्यायाधीशों ने यह भी कहा कि किसी सरकार के द्वारा किसी समलैंगिक व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं बनाया जा सकता। इसलिए न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए न्यायाधीश बेहतर हैं। न्यायाधीशों ने यह भी कहा कि वे कोलेजियम व्यवस्था को सुधारने के लिए आम नागरिकों से राय मांगेंगे। अतः इससे यह प्रतीत होता है कि न्यायाधीश भी यह मानते हैं कि कोलेजियम व्यवस्था पूर्ण नहीं है। पांच न्यायाधीशों की बेंच में चार न्यायाधीशों ने कोलेजियम व्यवस्था का समर्थन किया और एक न्यायाधीश न्यायमूर्ति चलमेश्वर ने कोलेजियम व्यवस्था का समर्थन नहीं किया, बल्कि उन्होंने **न्यायिक नियुक्ति आयोग** का समर्थन किया।

सरकार के द्वारा इस निर्णय की आलोचना की गई। आलोचकों के अनुसार, यह गैर-निर्वाचित पद अधिकारियों की निर्वाचित सदस्यों पर तानाशाही है तथा सरकार के द्वारा कोलेजियम व्यवस्था द्वारा नियुक्ति न्यायाधीशों की प्रक्रिया को सार्वजनिक एवं पारदर्शी बनाने की मांग की गई है।

कोलेजियम में सुधार

कोलेजियम को पारदर्शी बनाने के लिए निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया के निर्माण पर विचार हो रहा है, जिसके अंतर्गत् न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उनके द्वारा दिए गए निर्णय व उम्र निर्धारित की जाएगी तथा यह भी प्रस्ताव किया गया है कि न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए कोलेजियम की अनुशंसा से पहले दो न्यायाधीश उम्मीदवारों की योग्यता पर विचार करेंगे। सरकार ने यह भी प्रस्ताव किया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के आधार पर किसी भी न्यायाधीश की नियुक्ति को प्रतिबंधित किया जा सकता है।

न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया

अनुच्छेद-124(4) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति द्वारा दो आधारों पर हटाया जा सकता है-दुर्व्यवहार अथवा साबित कदाचार के आधार पर अथवा कार्य करने में असमर्थता के आधार पर। संविधान में न्यायाधीशों को हटाने के लिए संक्षिप्त प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार न्यायाधीश को संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत एवं उपस्थित तथा मत देने वाले दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित करने के बाद राष्ट्रपति उसे अपने पद से हटा देगा। संविधान के प्रावधानों के अनुसार वर्ष-1968 में संसद ने एक अधिनियम का निर्माण किया है।

न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 (संसदीय प्रक्रिया)

न्यायाधीश को हटाने का प्रस्ताव लोक सभा या राज्य सभा के किसी भी सदन में सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर लाया जा सकता है। लोक सभा के 100 या राज्य सभा के 50 सदस्य राष्ट्रपति को संबोधित एक पत्र सदन के स्पीकर या सभापति को देते हैं। स्पीकर या सभापति द्वारा प्रस्ताव स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जा सकता है। स्पीकर या सभापति द्वारा प्रस्ताव स्वीकार किए जाने पर निम्नलिखित प्रावधान किए जाते हैं। सदन द्वारा तीन सदस्यीय समिति का गठन किया जाएगा, **जिसमें** -

1. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या अन्य न्यायाधीश।
2. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश।
3. कोई परंपरागत् विधिवेत्ता।

यदि समिति ने आरोप सही पाया, तो प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाएगा। सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर जिस सदन में प्रस्ताव लाया गया है, वह सदन विशेष बहुमत से न्यायाधीश के विरुद्ध प्रस्ताव पारित करेगा। विशेष बहुमत का आशय सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत एवं उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से है। यह प्रस्ताव संसद के एक ही सत्र में पारित होना चाहिए, इसके पश्चात् दूसरे सदन में भी विशेष बहुमत से यह प्रस्ताव पारित किया जाएगा तथा प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति संबंधित न्यायाधीश को उसके पद से हटा देंगे।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष है, परंतु न्यायाधीशों की नियुक्ति की किसी न्यूनतम आयु का वर्णन नहीं है। न्यायाधीश अपने कार्यकाल के दौरान राष्ट्रपति को संबोधित लिखित त्यागपत्र दे सकते हैं। न्यायाधीशों के आयु से संबंधित किसी भी प्रश्न का निर्णय संसद या संसद द्वारा स्थापित संस्था द्वारा किया जाएगा।

न्यायाधीशों का वेतन (अनुच्छेद-125)

वेतन और भत्तों का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है तथा न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश (अनुच्छेद-126)

राष्ट्रपति के द्वारा कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की जा सकती है, जब भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो अथवा जब मुख्य न्यायाधीश कुछ समय के लिए अनुपस्थित हों अथवा मुख्य न्यायाधीश अपने कार्यों को करने में सक्षम न हों।

तदर्थ न्यायाधीश (अनुच्छेद-127)

जब स्वास्थ्य या अन्य कारणों से उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों के कोरम/गणपूर्ति का अभाव होता है, तो भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग से परामर्श करके तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाएगी। तदर्थ न्यायाधीश के रूप में उच्च न्यायालय के उन न्यायाधीशों को नियुक्त किया जाता है, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं और उन्हें उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की सभी उपलब्धियां प्राप्त होंगी। 99वें संविधान संशोधन के बाद राष्ट्रपति न्यायिक नियुक्ति आयोग की सलाह से तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति करेंगे।

अवकाश प्राप्त न्यायाधीश (अनुच्छेद-128)

भारत का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति (राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग) की सहमति से उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी अवकाश प्राप्त न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकता है। अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यभार अधिक होने तथा आवश्यकता पड़ने पर की जाती है। अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते राष्ट्रपति के द्वारा निर्धारित होते हैं।

तदर्थ न्यायाधीश तथा अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों में अंतर

अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों को तभी नियुक्त किया जा सकता है, जब वह सहमत हों। जबकि तदर्थ न्यायाधीशों के संदर्भ में ऐसी सहमति आवश्यक नहीं है। अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को तकनीकी अर्थों में न्यायाधीश नहीं माना जाता है तथापि वह न्यायाधीशों के समस्त विशेषाधिकारों का प्रयोग करते हैं। तदर्थ न्यायाधीशों के वेतन व भत्ते वही होते हैं, जो उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के होते हैं।

उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता

1. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को संघ की संचित निधि से वेतन, भत्ते एवं पेंशन दिए जाते हैं, जो दूसरी अनुसूची में वर्णित है।
2. वर्तमान में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 1,00,000 रुपये प्रति माह तथा अन्य न्यायाधीशों को 90,000 रुपये प्रतिमाह वेतन दिए जाते हैं।
3. यह बिन्दु ध्यान देने योग्य है कि न्यायाधीशों के वेतन व भत्तों का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।

4. कार्यकाल के दौरान वेतन व भत्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं हो सकता। (अपवाद अनुच्छेद-360 के अंतर्गत् वित्तीय आपातकाल के दौरान वेतन से कटौती की जा सकती है)
5. न्यायाधीशों के आचरण पर संसद या विधान सभा में कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं की जा सकती। (अपवाद जब हटाने की प्रक्रिया चल रही हो, तब चर्चा हो सकती है)
6. अवकाश प्राप्ति के बाद न्यायाधीश भारतीय क्षेत्र में किसी भी न्यायपालिका के समक्ष वकालत नहीं कर सकते।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियां एवं क्षेत्राधिकार

भारत में उच्चतम न्यायालय शासन का महत्वपूर्ण स्तंभ है। उच्चतम न्यायालय को संविधान और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। भारत के उच्चतम न्यायालय जितनी विस्तृत अधिकारिता विश्व के किसी भी न्यायालय की नहीं है। **उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित शक्तियां व क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं** -

A. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार।
B. रिट क्षेत्राधिकार।
C. अपीलीय क्षेत्राधिकार।
D. सलाहकारी अधिकार।
E. संविधान के संरक्षक के रूप में।
F. अभिलेखीय न्यायालय।
G. अन्य शक्तियां।

A. **प्रारंभिक व संघीय अधिकार क्षेत्र**

भारत में एक लिखित संविधान है। इस लिखित संविधान की 7वीं अनुसूची में संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। संघ एवं राज्यों के मध्य होने वाले विवाद अथवा विभिन्न राज्यों के बीच होने वाले विवादों का समाधान करने की शक्ति केवल उच्चतम न्यायालय को है, (अनुच्छेद-131), जिसे हम उच्चतम न्यायालय की संघीय अधिकारिता के रूप में भी जानते हैं। संघ-राज्य संबंधों की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने बोम्मई वाद, 1994 के ऐतिहासिक निर्णय में कहा कि संघीय शासन भारतीय संविधान का आधारभूत लक्षण है। एकाधिकारी अधिकार क्षेत्र से तात्पर्य ऐसे अधिकारों से है, जो केवल उच्चतम न्यायालय के पास है तथा अन्य कोई न्यायालय इन अधिकारों का प्रयोग नहीं करता है।

प्रारंभिक अधिकारिता के अपवाद

- ऐसे संधि अथवा करार जो संविधान के प्रारंभ से पहले किया गया था और वर्तमान में लागू है से उत्पन्न विवाद प्रारंभिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत् नहीं आता है।
- अनुच्छेद-262 के अंतर्गत् संसद को यह अधिकार है कि वह नदी जल विभाजन के लिए अलग विधि का निर्माण कर सकती है, जैसाकि वर्ष-1956 में संसद द्वारा विधि का निर्माण किया गया। संसद विधि बनाकर अंतर्राज्यिक नदी अथवा नदी घाटी के पानी के प्रयोग, प्रतिबंध या बंटवारा से संबंधी विवाद को उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर कर सकती है।
- संघ एवं राज्यों से संबंधित करों के विभाजन के मुद्दे तथा वित्तीय लेन-देन से संबंधित विषय आरंभिक अधिकारिता से बाहर रखे गए हैं, (अनुच्छेद-280 व 290)।

B. रिट अधिकारिता

बिना संरक्षण के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था खोखली है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के संरक्षण का दायित्व उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया है। अनुच्छेद-13(2) के अनुसार, विधायिका मौलिक अधिकारों को छीनने वाला कोई कानून नहीं बना सकती है तथा न्यायालय इस बात की जांच करता है कि क्या विधायिका द्वारा निर्मित कोई कानून मौलिक अधिकारों का हनन तो नहीं कर रहा है? अनुच्छेद-32 के अनुसार, उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह मौलिक अधिकारों को लागू करवाने हेतु कार्यवाही करे। न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार पृच्छा जैसी रिटें जारी करने का अधिकार है। मूल अधिकारों की रक्षा के लिए कोई भी व्यक्ति सीधे उच्चतम न्यायालय में जा सकता है, परंतु इसे आरंभिक अधिकारिता नहीं कहा जाता, क्योंकि मूल अधिकारों के संबंध में व्यक्ति और राज्य के बीच विवाद होता है। जबकि आरंभिक अधिकारिता के अंतर्गत् विवाद राज्य और संघ के

बीच अथवा दो राज्यों के बीच में होता है। रिट अधिकारिता के अंतर्गत् मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए याचिका सीधे उच्चतम न्यायालय में दायर की जाती है। वर्ष-1980 के दशक से जनहित याचिकाओं का प्रयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय ने मौलिक अधिकारों की विस्तृत व्याख्या किया एवं समूह के अधिकारों की रक्षा के लिए किसी तीसरे व्यक्ति को भी उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर करने की स्वतंत्रता दे दी।

रिट जारी करने का अधिकार उच्च न्यायालयों को भी प्राप्त हैं, इसीलिए यह क्षेत्राधिकार सहवर्ती कहा जाता है। उच्च न्यायालय अनुच्छेद-226 के तहत् मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए रिट जारी कर सकता है। उच्च न्यायालय की रिट जारी करने की अधिकारिता उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता से विस्तृत है। जहां उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों के ही उल्लंघन पर रिट जारी कर सकता है, वहीं उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त अन्य मामलों में जैसे-संपत्ति की रक्षा के लिए भी रिट जारी कर सकता है। उच्च न्यायालयों के द्वारा केवल अपने राज्य क्षेत्र के निवासियों के लिए याचिका स्वीकार की जाती है, जबकि उच्चतम न्यायालय में भारत के किसी भी क्षेत्र से याचिका दायर की जा सकती है।

C. अपीलीय अधिकारिता

यह भारत का उच्चतम अपीलीय न्यायालय है। अपीलीय अधिकारिता से आशय उन मामलों से है, जिनमें उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में अपील की जाती है। इन मामलों में सीधे उच्चतम न्यायालय में प्रवेश नहीं किया जा सकता है। **उच्चतम न्यायालय के अपीलीय अधिकारिता में अंतर्निहित हैं** -

1. संविधान की व्याख्या के मामले जैसे-सिविल, दाण्डिक या अन्य, (अनुच्छेद-132)।
2. सिविल मामलों में अपील, (अनुच्छेद-133)।
3. दाण्डिक मामलों में अपील, (अनुच्छेद-134)।
4. विशेष इजाजत से अपील, (अनुच्छेद-136)।

1. संविधान की व्याख्या के मामले में अपील

संविधान की व्याख्या उच्च न्यायालय के द्वारा भी की जाती है, परंतु संविधान की अंतिम और निर्णायक व्याख्या का अधिकार केवल उच्चतम न्यायालय को है। अनुच्छेद-132(1) के अनुसार, भारत में स्थित किसी भी उच्च न्यायालय में चल रहे दीवानी, फौजदारी अथवा अन्य कार्यवाहियों में न्यायालय के निर्णय या अंतिम आदेश के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे कि किसी विधि में संविधान की व्याख्या का महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्निहित है। उदाहरण के लिए, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (IT Act) के भाग-66। को उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर रद्द कर दिया।

2. सिविल मामलों में अपील

सिविल मामलों में उच्चतम न्यायालय में तभी अपील की जा सकती है, जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे कि किसी वाद में विधि की व्याख्या का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है अथवा किसी वाद में संविधान की व्याख्या का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न अंतर्निहित है। मूल विधान में सिविल मामलों में उच्चतम न्यायालय में तभी अपील का जा सकती थी, जब वाद 20,000 रुपये से अधिक का हो, परंतु 30वें संविधान संशोधन, 1972 से यह प्रावधान हटा दिया गया और वर्तमान में सिविल या दीवानी मामलों में बिना उच्च न्यायालय के प्रमाण के उच्चतम न्यायालय में अपील संभव नहीं है।

3. दाण्डिक मामलों में अपील

दाण्डिक मामलों में उच्चतम न्यायालय की कोई आरंभिक अधिकारिता नहीं होती है। दाण्डिक मामलों में अपील हेतु कुछ मामलों में प्रमाण-पत्र की आवश्यकता होती है। प्रमाण-पत्र के साथ तभी अपील की जा सकती है, जब अपील के लिए उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र प्रदान करे कि वाद उच्चतम न्यायालय में अपील के योग्य है, (अनुच्छेद-134(क)।

कुछ मामले बिना प्रमाण-पत्र के ही अपीलीय होते हैं। दाण्डिक मामलों के अपील हेतु कुछ दशाओं में प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं होती है। उच्चतम न्यायालय में साधिकार अपील हो सकती है। दूसरे शब्दों में, इसमें उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं होगी। **ऐसी अपील मृत्युदण्ड के मामले में तब होती है, जब** -

- जनपद न्यायाधीश ने किसी व्यक्ति को निर्दोष कहा हो और उच्च न्यायालय द्वारा उसे मृत्युदण्ड की सजा दी गई हो।
- यदि उच्च न्यायालय ने किसी निचले न्यायालय से मामले को मंगाकर व्यक्ति को मृत्युदण्ड दे दिया हो।

- ऐसे मामले, जिनमें आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अधिक की कैद की सजा दी गई हो, तो इन मामलों में भी उच्चतम न्यायालय में अपील की जाती है।

4. विशेष इजाजत से अपील

यह उच्चतम न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति है। यदि व्यक्ति को अन्य किसी साधन के द्वारा न्याय न मिल सके, तो उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत (Special Leave Petitions (SLP)) की शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा उच्चतम न्यायालय भारत के किसी भी न्यायिक क्षेत्र से अपने समक्ष अपील की इजाजत दे सकता है। उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत की यह शक्ति अपीलीय शक्ति से भिन्न है। विशेष इजाजत उच्चतम न्यायालय द्वारा तब दी जा सकती है, जब विधि के किसी व्यापक महत्व का प्रश्न हो या ऐसी विशेष परिस्थितियां विद्यमान हों, जिसमें न्याय का घोर उल्लंघन किया गया हो। अत: विशेष इजाजत के अंतर्गत् उच्चतम न्यायालय, सिविल एवं दाण्डिक दोनों मामलों में सुनवाई कर सकता है। विशेष इजाजत की अपील उच्चतम न्यायालय की आपवादिक शक्ति है, सामान्य शक्ति नहीं। अत: विशेष इजाजत से अपील अन्य अपीलीय शक्ति का विकल्प नहीं है। विशेष इजाजत के अंतर्गत् सैन्य अधिकरणों के निर्णय की अपील उच्चतम न्यायालय में नहीं हो सकती।

D. सलाहकारी अधिकारिता

उच्चतम न्यायालय के निर्णय सरकार के लिए बाध्यकारी माने जाते हैं, परंतु सलाहकारी अधिकारिता के निर्णय इसके अपवाद हैं। सलाहकारी अधिकारिता का अर्थ है कि राष्ट्रपति किसी मामले में उच्चतम न्यायालय की सलाह ले सकता है, जिसका अभिप्राय है उच्चतम न्यायालय के द्वारा दिए गए सलाह सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं माने जाते हैं। **सलाह लेने के निम्नलिखित आधार हैं**- ऐसी संधियां और समझौते जो संविधान लागू होने के पहले संपादित किए गए हैं। इन मामलों में उच्चतम न्यायालय का राष्ट्रपति को सलाह देना अनिवार्य है, परंतु सरकार को सलाह मानना अनिवार्य नहीं है। राष्ट्रपति के द्वारा किसी सार्वजनिक महत्व के मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय से सलाह मांगी जा सकती है। इसमें उच्चतम न्यायालय सलाह दे सकता है अथवा मना भी कर सकता है, परंतु यह सलाह सरकार पर बाध्यकारी नहीं होती। जैसे-2जी स्पेक्ट्रम, केशव सिंह तथा अयोध्या मामले में भी राष्ट्रपति ने उच्चतम न्यायालय से सलाह ली थी।

सलाहकारी शक्ति का महत्व

सलाहकारी शक्ति के अंतर्गत् दी गयी सलाह से सरकार को उस महत्वपूर्ण तथ्य पर विधि की व्याख्या तथा जटिलताओं का उत्तर मिल जाता है। इसलिए सरकार विधि के निर्माण से पहले सलाह का ध्यान रखती है। सलाहकारी निर्णय भले सरकार पर बाध्यकारी न हो, लेकिन अधीनस्थ न्यायालयों के लिए बाध्यकारी एवं निर्देश के रूप में माने जा सकते हैं। इसके द्वारा सरकार किसी भी मुद्दे पर न्यायपालिका का दृष्टिकोण पहले से जान सकती है और विधि-निर्माण के समय न्यायपालिका की सलाह को ध्यान में रखा जाता है। उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है, जिसका अभिप्राय है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय अन्य न्यायालयों के लिए साक्ष्य माने जाएंगे। इसीलिए सलाहकारी अधिकारिता के अंतर्गत् उच्चतम न्यायालय के द्वारा दी गई सलाह अन्य न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होगा। भले ही यह सरकार के लिए बाध्यकारी न हो। अनेक मामलों में यह भी देखा गया है कि उच्चतम न्यायालय की सलाहकारी अधिकारिता को व्यावहारिक रूप में सरकार द्वारा मान लिया गया। जैसे-गुजरात राज्य में चुनाव का मामला, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने चुनाव आयोग के पक्ष का समर्थन करते हुए कहा था कि वर्ष-2002 के गोधरा दंगों के तत्काल बाद गुजरात में विधान सभा चुनाव कराने की परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं। सलाहकारी अधिकारिता भारतीय उच्चतम न्यायालय की एक विशिष्ट शक्ति है, जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय केवल विवादों का समाधान ही नहीं करता, बल्कि सलाह भी प्रदान करता है।

मामले जिन पर सलाहकारी शक्ति का प्रयोग किया गया

1. दिल्ली विधि अधिनियम।
2. केरल शिक्षा विधेयक।
3. बेरूबारी संघ का मामला।
4. समुद्रीय प्रशुल्क अधिनियम।
5. केशव सिंह वाद।
6. राष्ट्रपति चुनाव, 1974
7. विशेष न्यायपालिका अधिनियम, 1978

8. कावेरी जल विवाद अधिनियम।
9. राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवादास्पद ढांचे का मामला।
10. जजेजवाद, 1998
11. जम्मू एवं कश्मीर राज्य का पुनर्वास अधिनियम।
12. स्पेशल रिफरेंस अधिनियम, 2001
13. गुजरात विधान सभा चुनाव, 2002
14. पंजाब जल समझौता समाप्ति अधिनियम, 2004
15. 2-G स्पेक्ट्रम मामला, 2012

E. संविधान के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका

भारतीय न्यायपालिका संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करती है तथा न्यायपालिका यह देखती है कि क्या संविधान में उल्लिखित प्रावधानों का पालन किया जा रहा है या नहीं? अनुच्छेद-13(2) के अनुसार, यदि विधायिका द्वारा निर्मित कोई विधि संविधान के भाग-3 में उल्लिखित प्रावधानों का उल्लंघन करती है, तो न्यायालय उस विधि को विरोध की सीमा तक शून्य घोषित कर सकता है। अनुच्छेद-32 के अनुसार, मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय विभिन्न रिट निकाल सकता है। अनुच्छेद-245 के अनुसार, न्यायालय यह देखता है कि क्या केन्द्र व राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन के प्रावधानों का पालन किया जा रहा है? संविधान के अनुसार, संघ सरकार एवं राज्य सरकारें अपनी-अपनी सूची में ही विधि-निर्माण पर कार्य कर सकती हैं। संघ सूची पर केन्द्र सरकार तथा राज्य सूची पर राज्य सरकार कानून का निर्माण कर सकती है। न्यायपालिका यह भी देखती है कि क्या कानून का निर्माण उचित प्रक्रियाओं के अनुसार हुआ है या नहीं? संविधान में किसी भी प्रकार का संशोधन अनुच्छेद-368 में वर्णित प्रक्रियाओं के अनुसार ही हो सकता है। यदि ऐसा नहीं हुआ है, तो न्यायालय किसी भी संशोधन को रद्द घोषित कर सकता है। केशवानंद भारती वाद के अनुसार, संविधान को संसद के द्वारा संशोधित किया जा सकता है, परंतु इसके आधारभूत ढांचे में पूर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के संरक्षण की भूमिका का निर्वहन करते हुए आधारभूत ढांचे का विचार प्रतिपादित किया। अतः संसद के संविधान संशोधन की शक्ति सीमित है।

F. अभिलेखीय न्यायालय

उच्चतम न्यायालय भारत का अभिलेखीय न्यायालय है (अनुच्छेद-129)। **अभिलेखीय न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं-**

- उच्चतम न्यायालय की सभी कार्यवाहियां व निर्णय लिखित होती हैं तथा उन्हें साक्ष्य के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। अधीनस्थ न्यायालयों में उच्चतम न्यायालय के पूर्व निर्णयों (Precedent) को साक्ष्य के रूप में माना जाता है
- न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने का अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ अन्य न्यायालयों को भी प्राप्त हैं।

अपील के राष्ट्रीय न्यायालय का प्रस्ताव (National Court of Appeal)

वर्ष-2016 में उच्चतम न्यायालय के द्वारा एक जनहित याचिका की सुनवाई करते हुए सरकार को यह निर्देश दिया कि देश के विभिन्न भागों में अपील के चार राष्ट्रीय न्यायालयों का गठन होना चाहिए, जिससे उच्चतम न्यायालय के ऊपर कार्य का बोझ कम होगा तथा न्यायपालिका में मामलों को त्वरित रूप में निपटाया जाएगा। ये न्यायालय सिविल और आपराधिक मामलों में अपील के सर्वोच्च न्यायालय होंगे। वर्तमान में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विवाह, किराया, श्रम, सेवा तथा भूमि संबंधित विवाद में अपील के द्वारा मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, जिससे उच्चतम न्यायालय का ज्यादातर समय इन मामलों के निर्धारण में खर्च हो जाता है।

उच्चतम न्यायालय की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है और उच्चतम न्यायालय संघीय विवादों, केन्द्रीय तथा राज्य द्वारा निर्मित विधियों एवं उन सार्वजनिक महत्व के विधियों की व्याख्या करे, जिनमें संविधान की व्याख्या अंतर्निहित है। विभिन्न न्यायालयों के बीच मतभिन्नता से संबंधित मामलों की व्याख्या तथा संविधान संशोधन के न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति उच्चतम न्यायालय के पास होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय विभिन्न मुद्दों पर राष्ट्रपति को सलाह भी देगा। अतः उच्चतम न्यायालय की भूमिका संवैधानिक मामलों से संबंधित विवाद से सीमित होनी चाहिए।

G. अन्य शक्तियां

पुनरावलोकन याचिका (Review petition)

सामान्यत: उच्चतम न्यायालय का निर्णय अंतिम माना जाता है और इसके विरुद्ध कहीं पर भी अपील नहीं किया जा सकता है, परंतु उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध पुन: उच्चतम न्यायालय में अपील किया जा सकता है। इसके लिए एक वरिष्ठ वकील तथा एक न्यायाधीश यह प्रमाणित करे कि पहला निर्णय पूर्णत: सही नहीं था, तब पुनरावलोकन याचिका दायर की जा सकती है। पुनरावलोकन याचिका उच्चतम न्यायालय के निर्णय के 30 दिन के भीतर दायर होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय में न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध पुन: याचिका दायर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, वर्ष-2012 में 2-स्पेक्ट्रम मामले में सरकार ने उच्चतम न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर किया।

उपचारात्मक याचिका (Curative petition)

उच्चतम न्यायालय के द्वारा वर्ष-2002 में उपचारात्मक याचिका का विचार प्रतिपादित किया गया। यदि व्यक्ति के साथ घोर अन्याय हुआ है और उसकी पुनरावलोकन याचिका अस्वीकार कर दिया जाय, तो वह उपचारात्मक याचिका दायर कर सकता है और याचिका को दायर करने की निश्चित समय सीमा निर्धारित नहीं है तथा इसे तीन वरिष्ठतम् न्यायाधीशों एवं उन न्यायाधीशों के द्वारा प्रमाणित होने चाहिए, जिन्होंने निर्णय दिया है। इसके अतिरिक्त एक वरिष्ठ वकील द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। यदि बहुमत न्यायाधीश सहमत हैं, तो ये याचिका उसी बेंच को सौंपी जाएगी, जिसने पहले निर्णय दिया है। याचिका में पुनरावलोकन याचिका रद्द करने का आधार उल्लिखित है। जैसे-न्यायाधीशों के द्वारा किसी प्रकार का पक्षपात किया गया हो अथवा प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन किया गया हो। इसमें यह प्रमाणित किया जाय कि न्याय का उल्लंघन हुआ है, जिस पर पुनर्विचार आवश्यक है।

न्यायालय की अवमानना

न्यायालयों ने कई मामलों में अपनी इस शक्ति का प्रयोग किया है। न्यायालय की अवमानना से तात्पर्य न्यायालय के क्रियाकलापों पर अनुचित टिप्पणी करने से है। **न्यायालय की अवमानना** एक विधिक शब्द है। न्यायालय की अवमानना करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति न्यायालय को प्राप्त है। जब न्यायालय किसी मुकद्दमे की सुनवाई या जांच के दौरान यह महसूस करता है कि कोई व्यक्ति उसकी अवमानना कर रहा है, तब वह अपने आदेश में इस शब्दावली का प्रयोग करता है। यह न्यायालय की सबसे बड़ी शक्ति है, जिसका प्रयोग कर वह मुकद्दमों के दौरान चल रही कार्यवाही में जानबूझकर व्यवधान डालने वाले व्यक्ति को उसके इस आचरण के लिए दण्डित कर सकता है।

अवमानना में निम्नलिखित अर्थ समाहित हैं –

- न्यायालय के वैध आदेश का अनुपालन नहीं करने पर।
- न्यायाधीश के प्रति निरादर प्रदर्शित करने पर।
- असंगत व्यवहार से न्यायालय की कार्यवाही में बाधा डालने या ऐसे तथ्यों को प्रकाशित करने से जिनसे मुकद्दमे के न्यायोचित संपादन में खतरा उत्पन्न होने की संभावना बनती हो।
- उपर्युक्त कारणों से न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ होती है। न्यायालय की अवमानना का दोषी पाए जाने पर संबंधित व्यक्ति को न्यायाधीश जेल या जुर्माने की सजा दे सकता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-129 एवं 215 में अवमानना का प्रावधान है। यह शक्तियां उच्च न्यायपालिका (Higher Judiciary) को प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। भारतीय संसद द्वारा वर्ष-1952 में न्यायालय अवमानना कानून, 1952 बनाया गया तथा वर्ष-1971 में न्यायालय अवमानना संशोधन कानून, 1971 पास किया गया।

आवश्यकता

न्यायपालिका में लोगों के विश्वास को बनाए रखने के लिए अवमानना के प्रावधानों का होना अति आवश्यक है। अन्यथा न्यायाधीशों की ईमानदारी, न्यायिक क्षमता तथा निष्पक्षता पर अवैधानिक आक्रमण बहुत तीव्र एवं भयावह ढंग से हो सकते हैं। ऐसा देखा गया है कि कानून की अवहेलना करने वाले अपने व्यवहार और अभद्र वक्तव्यों से न्यायपालिका की गरिमा को नष्ट करने का प्रयास करते हैं और ऐसी स्थितियों में अवमानना संबंधी प्रावधान न्यायपालिका की सुरक्षा में आ खड़े होते हैं। अवमानना प्रावधानों के अभाव में न्यायपालिका की विश्वसनीयता गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो सकती है एवं शरारती तत्व न्यायपालिका के सदस्यों की छवि को धूमिल करने की नीयत से उनके विरुद्ध तथ्यहीन आरोप लगाने का प्रयास करते हैं तथा वे दूसरों के मुंह से सुनी हुई बातों की तह में जाने का प्रयास नहीं करते और बिना उन आरोपों की उपयुक्त जांच किए, उन्हें हथकंडा बनाकर न्यायपालिका के सदस्यों के विरुद्ध हवा में उछालते रहते हैं।

निष्पक्ष आलोचना

प्रत्येक नागरिक को न्यायालयों के आचरण पर निष्पक्ष आलोचना के नाम पर टिप्पणी करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि ऐसा होगा तब न्यायिक संस्था का कोई औचित्य ही नहीं रह जाएगा। जब कोई व्यक्ति किसी लंबित मुकद्दमे के बारे में अशोभनीय टिप्पणी करता है और इसके उपरांत वह नोटिस प्राप्त करता है, तो नोटिस प्राप्त कर्त्ता यह बयान देता है कि इस नोटिस को भेजने का उद्देश्य आलोचना को दबाना और असहमति का मुंह बंद करना है तथा उन लोगों को तंग करना है, जो उससे असहमत हैं। अत: यह न्यायिक संस्था पर सीधा प्रहार माना जाता है, मात्र किसी वैयक्तिक न्यायाधीश के आचरण पर ही नहीं।

न्यायालय की अवमानना व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

भले ही संविधान के अनुच्छेद-19(1)(A) ने सभी नागरिकों को बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी हो, लेकिन अनुच्छेद-129 तथा 215 में उच्चतर न्यायपालिका को न्यायालय की अवमानना संबंधी अधिकार दिए गए हैं, जो अनुच्छेद-19(1)(A) के तहत् दी गयी स्वतंत्रता को सीमित कर देते हैं। यह प्रावधान न्यायपालिका की सुरक्षा एवं प्रोत्साहन के लिए आवश्यक है तथा इन दोनों प्रावधानों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाना बेहतर है।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR

उच्च न्यायालय
(High Court)

भारत की समेकित एकल न्यायिक व्यवस्था में उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय से नीचे है, लेकिन अधीनस्थ न्यायालयों से ऊपर कार्य करता है। राज्य के न्यायिक प्रशासन में उच्च न्यायालय की स्थिति शीर्ष पर होती है। भारत में उच्च न्यायालय का सर्वप्रथम गठन वर्ष-1862 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में हुआ। वर्ष-1866 में चौथे उच्च न्यायालय की स्थापना इलाहाबाद में हुई। इसके बाद ब्रिटिश भारत में प्रत्येक प्रांत में अपना उच्च न्यायालय बन गया। वर्ष-1950 के बाद प्रांत का उच्च न्यायालय ही राज्य का उच्च न्यायालय बना।

भारत के संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गयी है, लेकिन सातवें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956 में सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह दो या दो से अधिक राज्यों एवं एक संघ-राज्य क्षेत्र के लिए साझा उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है। इस समय भारत में कुल 24 उच्च न्यायालय हैं, जिनमें से तीन साझा उच्च न्यायालय हैं। दिल्ली एकमात्र ऐसा संघ-राज्य क्षेत्र है, जिसका अपना उच्च न्यायालय है। न्यायालय की अधिकारिता में संशोधन का अधिकार संसद को है।

उच्च न्यायालय का संगठन

प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और राष्ट्रपति के निर्देशानुसार नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते हैं, जिनकी संख्या का निर्धारण राष्ट्रपति करता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

संविधान में 99वें संशोधन के द्वारा कोलेजियम व्यवस्था के स्थान पर राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का गठन किया गया। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश भेजी जाएगी। अनुच्छेद-124 (b) के अंतर्गत् राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के कृत्यों का वर्णन किया गया है। **इसके अंतर्गत् तीन प्रमुख कार्यों का उल्लेख है** -

1. भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए नामों की सिफारिशें करना।
2. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों का एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण करने का कार्य।
3. यह सुनिश्चित करना कि सिफारिश किए गए सदस्य सक्षम एवं योग्य हैं।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग असंवैधानिक

उच्चतम न्यायालय के दिए गए एक ऐतिहासिक निर्णय में न्यायिक नियुक्ति आयोग के प्रावधान को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया। इसलिए वर्तमान में पुनः कोलेजियम प्रणाली के द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा रही है। परंतु इसे पारदर्शी बनाने के लिए निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया के निर्माण पर विचार हो रहा है, जिसके अंतर्गत् न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उनके द्वारा दिए गए निर्णय व उम्र निर्धारित की जाएगी तथा यह भी प्रस्ताव किया गया है कि न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए कोलेजियम की अनुशंसा से पहले दो न्यायाधीश उम्मीदवारों की योग्यता पर विचार करेंगे।

न्यायाधीशों की योग्यता

- वह भारत का नागरिक हो।
- उसे भारत के न्यायिक कार्य में 10 वर्ष का अनुभव हो, अथवा
- वह उच्च न्यायालय या न्यायालयों में 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।
- योग्यता में न्यूनतम उम्र का वर्णन नहीं है।

शपथ/प्रतिज्ञान

राज्यपाल या उसके द्वारा नियुक्त किसी अधिकृत व्यक्ति के समक्ष न्यायाधीशों द्वारा शपथ ली जाती है। **न्यायाधीशों द्वारा निम्न शपथ ली जाती हैं** -

- भारतीय संविधान के प्रति सच्ची निष्ठा और श्रद्धा का पालन करेगा।
- भारत की संप्रभुता और अखण्डता को अक्षुण्य रखेगा।
- अपने ज्ञान, योग्यता एवं विवेक से पद का पालन करेगा।
- संविधान एवं विधि की मर्यादा बनाए रखेगा।

कार्यकाल

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कार्यकाल की अधिकतम् उम्र 62 वर्ष है और इससे पहले भी वह अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को भेज सकता है। न्यायाधीशों की न्यूनतम आयु का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, परंतु न्यायपालिका की आंतरिक और औपचारिक प्रक्रिया के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति तभी की जा सकती है, जब वह 45 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो। न्यायाधीशों की आयु से संबंधित किसी प्रश्न का निराकरण भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से राष्ट्रपति द्वारा किया जाएगा।

न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया

संविधान में सिद्ध कदाचार और अक्षमता के आधार पर राष्ट्रपति के द्वारा न्यायाधीशों को निम्नलिखित प्रक्रिया के अनुसार हटा सकता है, जिसके लिए संसद एक विशेष बहुमत (दो-तिहाई) से प्रस्ताव पारित करती है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 का निर्माण किया गया है, **जिसकी प्रक्रिया निम्नलिखित हैं** -

1. लोक सभा के 100 सदस्यों अथवा राज्य सभा के 50 सदस्यों के हस्ताक्षर पत्र वाले प्रस्ताव को सदन के अध्यक्ष अथवा सभापति को सौंपना होगा।
2. अध्यक्ष/सभापति प्रस्ताव को स्वीकृत/अस्वीकृत कर सकता है।
3. यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, तो अध्यक्ष/सभापति आरोपों की जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति का गठन करेगा।
4. **समिति में निम्न सदस्य होंगे –**
   - भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) या उच्चतम न्यायालय का कोई अन्य न्यायाधीश।
   - उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश।
   - एक प्रख्यात न्यायविद्।
5. यदि समिति यह पाती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है, वह अयोग्य है, तो सदन प्रस्ताव पर विचार कर सकता है।
6. संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रपति के पास संस्तुति के लिए भेजी जाती है तब राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटा सकता है।

वेतन व भत्ते

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का वेतन व भत्ता संसद द्वारा निर्धारित किया जाता है। इनमें उनके कार्यकाल के दौरान (अपवाद-वित्तीय आपातकाल) अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। मुख्य न्यायाधीश का वेतन-90,000 रुपये प्रमिाह एवं अन्य न्यायाधीश का वेतन-80,000 रुपये प्रतिमाह निश्चित किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें भत्ता नि:शुल्क आवास, चिकित्सा, कार एवं टेलीफोन सुविधा व पेंशन जो कि वेतन का 50 प्रतिशत दिया जाता है।

न्यायाधीशों का स्थानांतरण

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानांतरण के लिए राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग द्वारा राष्ट्रपति को सिफारिश भेजी जाएगी। अनुच्छेद-124(b) के अंतर्गत् यह प्रावधान किया गया है कि उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों का एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण करने का कार्य राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की सिफारिश पर की जाएगी।

उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता

न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के परामर्श से की जाती है। इनका कार्यकाल सुरक्षित होता है तथा इनकी सेवा एवं शर्तें निश्चित होती हैं, जिसमें कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा

सकता, सिवाय वित्तीय आपातकाल के। न्यायाधीश और स्टॉफ के वेतन व भत्ते संबंधित राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं, (अनुच्छेद-202(3)(घ))। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पेंशन भारत की संचित निधि से दी जाती है। न्यायाधीशों के आचरण पर लोक सभा एवं विधान सभा में चर्चा नहीं की जा सकती (अपवाद-महाभियोग के समय छोड़कर) तथा सेवा निवृत्ति के बाद उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उन उच्च न्यायालयों में वकालत नहीं कर सकता, जहां वह न्यायाधीश के रूप में काम कर चुका है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति होती है।

उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार एवं शक्तियां

आरंभिक अधिकार क्षेत्र

उच्च न्यायालय सामान्यत: अपील का न्यायालय है। अत: उच्च न्यायालय के समक्ष आने वाले ज्यादातर मामले जिला न्यायपालिका के निर्णय के विरुद्ध अपील के रूप में आते हैं, परंतु भारत के कुछ उच्च न्यायालयों में सिविल मामले सीधे लाए जा सकते हैं। मद्रास उच्च न्यायालय व मुंबई उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल मामले सीधे लाए जा सकते हैं। उच्च न्यायालयों को आपराधिक या दीवानी मामले में किसी प्रकार की आरंभिक अधिकारिता नहीं है, जिसका अभिप्राय है कि आपराधिक मामले जनपद न्यायालय से अपील के बाद ही उच्च न्यायालय में लाए जा सकते हैं। लोक सभा और विधान सभा चुनाव से संबंधित विवाद सीधे उच्च न्यायालय में सुने जाते हैं।

रिट शक्ति

उच्च न्यायालयों के द्वारा मूल अधिकारों की रक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध और उत्प्रेषण नामक रिट जारी की जाती है। उच्च न्यायालय के द्वारा केवल उच्च न्यायालय के राज्य के भू-भाग में रहने वाले व्यक्तियों के लिए रिट जारी किया जा सकता है, (अनुच्छेद-226)। उच्च न्यायालयों के द्वारा मूल अधिकारों की रक्षा के अलावा अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिट जारी की जा सकती है। उदाहरण के लिए, संपत्ति का अधिकार वर्तमान में वैधानिक अधिकार है, जिसकी रक्षा के लिए उच्च न्यायालय रिट जारी कर सकता है। उच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या का भी अधिकार है। यह मूल अधिकारों की भी रक्षा करता है और मूल अधिकारों की रक्षा के लिए उच्च न्यायालयों में जनहित याचिकाएं भी दायर की जा सकती हैं।

अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय मूलत: एक अपीलीय न्यायालय है, इसमें संबंधित राज्य क्षेत्र के अंतर्गत् आने वाले अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों के विरुद्ध सुनवाई की जाती है। इसके अंतर्गत् दीवानी/सिविल और आपराधिक दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई की जाती है। जिन मामलों में जनपद न्यायालय ने 7 वर्ष की सजा सुनाई हो, उसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। अन्य महत्वपूर्ण मामलों में भी उच्च न्यायालयों में अपील का प्रावधान है। राज्य में स्थित सभी अधिकरण (Tribunals) पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण होता है तथा इन अधिकरणों से उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध भी उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। भारत के कुछ उच्च न्यायालयों जैसे-इलाहाबाद, मुंबई, कोलकाता, मद्रास और पटना उच्च न्यायालयों में एक न्यायाधीश के बेंच के निर्णयों को उसी उच्च न्यायालय में उससे बड़ी बेंच में अपील की जा सकती है, जिसे **लेटर्स पेटेन्ट** की अपील कहा जाता है।

अधीक्षण की शक्ति

आंध्र प्रदेश के विभाजन के बाद उच्च न्यायालय के द्वारा दोनों राज्यों के लिए न्यायिक अधिकारियों का विभाजन किया गया और इसका विरोध करने वाले न्यायिक अधिकारियों को उच्च न्यायालय ने बर्खास्त भी कर दिया, जो उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति का उदाहरण है। उच्च न्यायालय राज्य क्षेत्र में स्थित सभी प्रकार के न्यायालयों पर निगरानी रखता है और राज्य में स्थित अधीनस्थ न्यायालय तथा विभिन्न अधिकरणों पर उच्च न्यायालय को अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है। अधीनस्थ न्यायालयों के किसी भी न्यायाधीश के विरुद्ध उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है। जनपद न्यायाधीशों को अवकाश देने का अधिकार भी उच्च न्यायालयों को है तथा जनपद न्यायाधीशों को राज्यपाल के द्वारा अपने पद से तभी हटाया जाएगा, जब उच्च न्यायालय के द्वारा अनुशंसा की जाए, परंतु उच्च न्यायालय की अधीक्षण शक्ति में सैन्य न्यायालय शामिल नहीं हैं।

अभिलेख का न्यायालय

अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय को **दो प्रकार की शक्तियां प्राप्त हैं** -

- उच्च न्यायालय के फैसले, कार्यवाही और कार्य लिखित रूप में होती है तथा उच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों को साक्ष्य के रूप में सुरक्षित रखा जाता है, जो अधीनस्थ न्यायालयों में साक्ष्य रूप में मान्य होता है।
- इन्हें न्यायालय की अवमानना पर साधारण कारावास, आर्थिक दण्ड अथवा दोनों प्रकार के दण्ड देने का अधिकार है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति राज्य विधान मण्डल व केन्द्र सरकार दोनों के अधिनियमों और कार्यकारी आदेशों की संवैधानिकता के परीक्षण के लिए हैं। यदि वे संविधान का उल्लंघन करते हैं, तो उन्हें असंवैधानिक अथवा सामान्य/शून्य घोषित किया जा सकता है, परिणामस्वरूप सरकार उन्हें लागू नहीं कर सकती है।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR